© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 03 | July - September 2017

# लोकगीतों में संगीत विधन

डॉ. राम मेहर सिंह, एसोसिएट प्रोपफेसर, हिन्दी विभाग
छोटूराम किसान स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, जीन्द।

'लोक' शब्द के अर्थ पर प्रारम्भ में कापफी विचार किया गया है। यह निस्संदेह अँग्रेजी के ' थ्वसा ' शब्द का पर्यायवाची है। अँग्रेजी में 'पफोक' का अर्थ है– लोक,जाति, राष्ट्र या वर्ग–विशेष। सभ्य राष्ट्रों में बसने वाली असभ्य, आदिम तथा जंगली जाति की परम्परा, रीतितथा अन्धविश्वास के लिए ॅण्श्रण् जीवउे ने 'पफोकलोर' शब्द का प्रयोग किया। ;29द्ध उस समय की आदिम जातियों के गान तथा नृत्य के लिए श्थ्वसा. डनेपबश तथा श्थ्वसा.क्दबमश शब्द का प्रयोग होने लगा। यही अँग्रेजी का श्थ्वसा श शब्द जर्मन भाषा में श्टवसोसपमकश शब्द के अर्थ में प्रयुक्तफ होता जाना पड़ता है। परन्तु कुछ विद्वान इस शब्द को लोकगीत के अर्थ में ग्रहण करने में संकोच करने लगे वे इसे अप्रिय एवं संकीर्ण अर्थ का द्योतक मानते है। ;30द्ध परन्तु यह निश्चित है कि अँग्रेजी के 'पफोक' शब्द से ही 'पफोकलिटरेचर', 'पफोकटेल', 'पफोकलोर', 'पफोकसाहित्य', 'लोककथाँ', 'लोकसंस्कृति', लोकनृत्य', आदि शब्दों का निर्माण हुआ। पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने इसका अर्थ 'ग्रामगीत' किया है। ;31द्ध इसी आधर पर देवेन्द्र सत्यार्थी ;32द्ध तथा सुधंशु ;33द्ध ने भी 'ग्रामगीत' शब्द ही अपनाया है। श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर ने एकपत्रा में 'रूरल साँग' शब्द का प्रयोग किया। त्रिपाठी जी को लिखित एक और पत्रा में लाला लाजपतराय ने भी एक स्थान पर ;34द्ध 'पफोकलोर' के लिए 'गीतकथा' और 'पफोकसाँग' के लिए 'ग्रामगीत' शब्द प्रयुक्तफ किया है। 'ग्रामगीत' शब्द को अध्कि उपयुक्तफ बताते हुए पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है –''मैंने गीतों का नामकरण 'ग्रामगीत' शब्द से किया है, क्योंकि गीत तो ग्राम तो ग्राम की सम्पत्ति है, शहरों में तो वे गए है, जन्में नहींऋ पिफर ग्रामों का यह गौरव उनसे क्यो छीना जाय? ग्रमीगत तो शहरों में भी प्रत्येक संस्कार में, जातीय त्यौहारों और सार्वजनिक उत्सवों में गाये जाते है। इससे मै उचित समभफता हूँ कि गाँवों की यह यादगार 'ग्रामगीत' शब्द द्वारा स्थाई हो जाया।'' ;35द्ध

डा0 कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार, ''ग्रामगीत' और 'लोकगीत' भिन्न–भिन्न है। उनके अनुसार 'बेलेड' लोकगीत है और 'पफोकसाँग' ग्रामजीत। उनका कहना है–'ग्रामगीत से मेरा आशय उन गीतों से है जो गये है– लोकगीत वे है जो प्रबन्धत्मक है और इनमें कथा की
प्रधनता है, गान नहीं। '' ;36द्ध

उपर्युक्तफ विवेचन के अतिरिक्तफ विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई 'ग्रामगीत' की परिभाषाओं पर भी एक दृष्टि डाल सेना आवश्यक है–

;1द्ध 'ग्रामगीत' प्रकृति के उद्गार है। ;37द्ध – पं0 रामनरेश त्रिपाठी

;2द्ध 'ग्रामगीत छोटे होते है और रचनाकाल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते है। '' ;38द्ध – कृष्णानन्द गुप्त

;3द्ध 'ग्रामगीत छोटा ही नहीं बड़ा भी हो सकता है। ;39द्ध – डा0 सत्येन्द्र

;4द्ध ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद श्रृति है। ;40द्ध – पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

उपर्युक्तफ विवेचन एवं परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पं0 रामनरेश त्रिपाठी के अनुकरण पर ही अन्य विद्वानों ने भी 'ग्रामगीत' शब्द का प्रयोग 'पफोकसाँग' ;लोकगीतद्ध के पर्याय के रूप में किया। '' ग्राम' शब्द को अपनाने में जहाँ तक भावुकता का प्रश्न है उसका प्रयोग करना व्यक्ति–विशेष के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है, किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन एवं भाषा–विज्ञान की दृष्टि से किसी भी शब्द के प्रयोग में उनकी एकरूपता का रहना आवश्यक है। ग्रामगीत शब्द में लोकगीत शब्द की सी व्यापकता का अभाव है। ग्राम के अतिरिक्त ऐसा भी एक विस्तृत समाज है जिसकी अपनी धराणाएँ हैं, विश्वास है, गीत है। भारत की सम्पूर्ण मानवता को ग्राम और नगर की सीमा में बाँध्ना उचित नहीं है। क्योंकि साधरण जनता केवल ग्राम तक सीमित नहीं है। लोक की सीमा बड़ी व्यापक है, व उसमें ग्राम और नगर का समन्वय अविच्छिन्न है। ;41द्ध

सर्वप्रथम श्री सूर्यकरण पारीक ने 'ग्रामगीत' शब्द का विशेष कर 'लोकगीत' की उपयुक्त स्वीकार किया। ;42द्ध इसके पश्चात पं0 हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डां0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'लोक' शब्द की स्थिरता पर प्रकाश डाला। द्विवेदी जी ने लोकसंस्कृति, लोककला, लोकसाहित्य आदि शब्दों का प्रयोग कर ग्राम और नगर के भेद को अस्वीकार की दिया।;43द्ध स्व0 भफवेरचन्द्र मेघारणी ने त्रिपाठी जी से पूर्ण ही 'लोकगीत' शब्द का प्रयोग गुजराती में किया ;44द्ध

निस्संदेह 'लोकगीत' शब्द अत्यन्त व्यापक एवं विशदार्थी है। 'लोक' का प्रयोग वस्तुतः ग्रामीण और नागरिक जन के अर्थ में सदा से ही व्यवहार में आता रहा है। अतः लोकगीत का प्रयोग सामान्य जनता द्वारा उद्भत 'मौखिक गीत' के अर्थ में ही ग्रहण किया जाना चाहिए। क्योकि लोकभावना का प्रतिबिम्ब केवल ग्राम ही जनता से नहीं हो सकता । ग्राम और नगर के

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 03 | July - September 2017

भेद को मिटाने वाला शब्द लोक ही है। ''लोकगीत लोकसाहित्य का ही गीत–प्रधन अंग है जिसका उद्भव नगर और ग्राम के संयुक्त साधरणजन के मध्य होता है। वही वर्ग 'लोक' है। किन्ही अंशों में लोकोन्मुखी–प्रवृत्ति का संस्कृतजन भी इस 'लोक' का अंश बन जाता है। अतः ग्रामगीत इस दृष्टि से लोकगीत के पूरक ही है। एक 'ग्रामगीत' लोकगीत हो सकता है, किन्तु 'लोकगीत' ग्रामगीत' नहीं हो सकता । ;45द्ध इसके अतिरिक्त 'लोक' शब्द अध्कि प्रचलित भी हो गया है। इस शब्द ने अपना स्थिर रूप धरण कर लिया है यथा लोकसंस्कृति, लोकसाहित्य, लोककथा, लोकनृत्य, लोकनाट्य लोककला, लोकगीत, लोकपरम्परा, लोकरीति, लोकविश्वास, लोकमानस आदि। ऐसी स्थिति में इस शब्द के स्थन किसी पर शब्द का प्रयोग करना इस शब्द के साथ अन्याय करना है।

आजकल साहित्य में 'लोकगीत' के लिए 'जनगीत' शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा है। डा0 मोतीचन्द ने 'पफोक' के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग किया। प्राचीनकाल में प्रदेश–विशेष के लिए 'जनपद' शब्द का प्रयोग होता रहा है। आजकल हिन्दी साहित्य में जनगीत तथा जनवादी साहित्य की बड़ी चर्चा है। डा0 नामवरसिंह में जनवादी साहित्य पर विचार करते हुए लिखा है–''जनसाहित्य औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न समाज–व्यवस्था की भूमिका में प्रवेा करने वाले सामान्य जन साहित्य है और इसीलिए जनसाहित्य, लोकसाहित्य से इसी अर्थ में भिन्न है कि लोकसाहित्य जहाँ जनता के लिए ही द्वारा रचित साहित्य है। '' ;46द्ध यही बात लोकगीत और जनगीत पर लागू होती है।

लोकसाहित्य का रचयिता लोकभावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है। वह अपने व्यक्तितव को लोकभावों के डुबोकर लोकस्वरूपी हो जाती है। जनसाहित्य के रचायिता का व्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य नहीं खोता। उसका साहित्य लोकसाहित्य के समान मौखिक न होकर मुद्रित होता है। जनसाहित्य शिष्ट व्यक्ति का साहित्य है। वास्तव में यही भेद लोकगीत और जनगीत में है।

लोकगीतों में संगीत का विधन :–

लोकगीतों की आत्मा लोकसंगीत है। शास्त्रीय संगीत का जन्म लोकसंगीत` से हुआ है। यह अत्यन्त ही प्राचीन है और जनजीवन के अध्कि निकट। मानव जीवन में आत्माभिव्यक्ति का अत्यध्कि महत्व है। मानव अपने मन की रागात्मक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए सरल और सहज साध्न या माध्यम ढूंढने की चेष्टा करता है। संगीत ही यह माध्यम है।

लोकसंगीत का क्षेत्रा अत्यन्त है। स्त्राी और पुरूष दोनों के द्वारा गाए जाने वाले गीतों में लोकध्ुनें सुनने को मिलेंगी। व्यापक रूप से लोकप्रगचलित कंठ के माध्ुर्य को व्यक्त करने
वाली समस्त ध्वनियाँ लय और तालगत सम्पत्ति लोकसंगीत के अन्तगर्त ही आती है। लोकसांहित्य के अन्तर्गत स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों की बहुतायत है अतः इन गीतों का अध्कि महत्व है। इन गीतों में लोकध्ुन एवं लोकशब्दावली का प्रयोग हुआ है। पुरूषों के गीतों में परिवर्तन अध्कि होने के कारण उसमें तो विकृति आगई है परन्तु स्त्रियों के गीत अभी शु(–प्रकृत रूप में ही प्राप्त होते है। पुरूष पर बाह्य प्रभाव अध्कि पड़ता है यही कारण है कि वह अपनी संचित परम्परा की रक्षा करने में नितान्त असमर्थ होता है। दूसरा कारण यह भी है कि पुरूष घर से बाहर अध्कि रहने के कारण तथा सभ्य समाज में उठने बैठने के कारण अपनी इस परम्परा को ;शिक्षित हो जाने की वजह से द्ध हेय समभफने लगता है। यही कारण है कि पुरूष से यह सम्पत्ति समाप्त होती चली जा रही है। परन्तु स्त्रियाँ अपने स्वभाव के अनुसार ;जो उनका प्रत्येक वस्तु के रक्षक का स्वभावद्ध इन गीतों की रक्षा करती रहती हैं। यही कारण है कि आज भी लोकगीतों नारीकंठ में लहराया करता है।

लोकगीतों के रचरिता शास्त्राीय विषय के ज्ञाता नहीं होते। वे प्रायः अशिक्षित होते है अतः पिंगल शास्त्रा का ज्ञान उन्हें नहीं के बराबर होता है। यही कारण है कि लोकगीतों में छन्द
सम्बन्धी अनेक दोष होने के कारण लयब(ता नहीं पाई जाती। परन्तु उनकी शब्द योजना एवं स्वरयोजना तथा अनुभूतिगस्य होती है। इसी से लोकगीतों में मध्ुरता, प्रसादगुणयुत्तफता एवं प्रधन रूप से मिलती है।

परन्तु लोकगीतों में छन्द को इतना महत्व नहीं दिया जाता जितना लय को। गेयता में हम लय पर अध्कि बल देते है। लय अर्थात् स्वरों की समगति। असन्तुलन में सन्तुलन की व्यवस्था ही संगीत है। सन्तुलन लय की ही व्यवस्था है वैदिक युग के इसे ')तु' कहा जाता था। सृष्टि का मूलाधर लय ही है। चन्द्रमा एक लय में घूमता है, नदी भी एक लय में बहती है। यहाँ तक कि जीवन भी एक लय में चलता पिफरता है। लय गीत का तो प्राण है। लय एक पालकी है जिस पर अनुभूति की राजकुमारी बैठकर जाती है। गीत में अनुभूति को भी लय से अध्कि महत्व दिया गया है। अतः कहा जा सकता है कि लय जब तक पालकी है तब तक स्वीकार है परन्तु जब लय राजकुमारी हो जाय और अरुभूति पालकी तब गेयता अर्थ हो जाती है। यह गेयता ही है जो सम्प्रेणीयता और स्मरणीयता को बढ़ाती है।

इस लय को संगीतशास्त्रा में तोड' भी कहा जाता है। लय और तुक दोनों भावों के अनुरूप होते हैं। लय वास्तव में लोकगीतों का मोहक गुण है। सामूहिक रूप स्त्रियाँ जब लयपूर्वक गीत गाती है तो वे गीतों की कमी को इसी लय के आधर पर स्वरों को घटा–बढ़ाकर पूरा कर लेती है।

लोकगीतों में कहरवा, दादरा तथा दीपचन्दी ध्ुनों का अध्कि प्रचलन है। पीलू, तिलक, जेजैवन्ती, कामोद, कापफी, खमाज, बिलावल आदि राग लोकगीतों में अध्कि मिलते हैं। वास्तव में लोकगीत में 'ताल' का तो कोई शास्त्रा होता नहीं अतः लय को ही प्रधनता दी गई है। लोकध्ुनों तथा लोकतालों से शास्त्रीध्ुनों एवं शास्त्रीयतालों का विकास हुआ है। हर लोकगीत शास्त्रीयता का बानः पहन सकता है लेकिन शास्त्रीयसंगीत लोकगीत नहीं बन सकता। शास्त्रीयसंगीत की क्लिष्ट प(ति के

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 03 | July - September 2017

बीच तथा सामाजिक संगीत की इस जनसाध्रण आवश्यकता के बीच लोकसंगीत सेतु का काम करते है। ;66द्ध लोकसंगीत में लयात्मक प्रवृत्ति को व्यत्तफ करने के लिए ढोन, ढोलक, चंग ढपफ, भफाँभफ, ताँशे, नगारे आदि अनेक प्रकार के वाद्य होते हैं। लोकगीतों मे विभिन्न वाद्यों का प्रयोग :–

संगीत का माध्यम वाद्य होते है। लोकसंगीत के माध्यम लोक–वाद्य होते है। वाद्यों के अभाव में लोकगायक अपने स्वरों को सम बनाए रखने में सदैव अपने को असमर्थ पाता है।

वाद्यों के माध्यम से ही वह किसी गीत को तन्मयता के साथ देर तक गा सकता है। वाद्यों की सहायता से ही गायक को बीच में साँस लेने का अवसर भी मिल जाता है। वाद्यों के द्वारा गायक श्रोताओं को मन्त्रामुग्ध भी किए रहता है।

''सरल लोकजीवन में वाद्य प्रत्येक पर वर्तमान रहते है। प्रातः काल जब स्त्रियाँ चक्की लगती है तो उसकी घरघराहट ही उसके स्वर में मिलकर वाद्य का रूप धरण कर लेती है। बच्चा पैदा होने पर माताओं की प्रसन्नता के मूक स्पर को खाली वाद्य द्वारा स्वर मिल जाते हैं। ढेंकली चलाने वाला आदमी पानी की सरसराहट को छप–छप कर ताल पर ही गा चलते हैं। गाड़ी हाँकने वाला व्यत्तिफ बैलों की घंटियों और खुरों की आवाज से ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन माँजने वाली स्त्राी बर्तनों की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है। धेबी कपड़े की पफटापफट से ही अपने स्वर को मुखरित कर संगीत की सृष्टि करता है। इस

प्रकार हम प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिये वाद्य उपस्थित पाते हैं।;67द्ध

वाद्य गानों की प्रकृति, समय, स्थान, जाति, आदि के अनुसार परिवर्तित होते रहे है। कुछ वाद्यों का प्रयोग तो विशेष स्थान एवं समय पर ही किया जाता है। '' लोक जीवन में हमें वाद्यों के दो मुख्य स्वरूप मिलते है। –प्रथम–मनुष्य की क्रियायें वाद्य ध्वनियों को हमे सुविध के लिये 'क्रिया–वाद्य' का नाम दे सकते है। द्वितीय–परन्तु दूसरे प्रकार के वाद्यों को हम वाद्यों को हम वाद्यों के स्वरूप मे ही सम्मुख लाते है– उदाहरण के लिए ढोलक। यदि हम इन वाद्यों के इतिहास को टटोलें तो हम इन प्रचलित वाद्यों के पीछे भी क्रिया को ही पायेंगे। लोकवाद्य अपने उत्पत्तिकाल में ऐसे साध्नों से उत्पन्न हुआ जो प्रतिदिन के कार्यो में आते रहे। आज भी आराम का बहुत प्रचलित लोकवाद्य दो बाँसों से बनता है। जो बहुत ध्वनि उत्पन्न करता है। ये बाँस लोक–मानस के क्रिया अड् ही रहे होगे। लोकवाद्य संगीत के साथ संगत देने वाले उपकरण ही नहीं रह गये अपितु वह स्वतन्त्रा रूप से भी बजाये जाने लगे और श्रोताओं को इन अर्थहीन किन्तु अनुभूतिपूर्ण स्वरों में भी मानवीय सवेदनशीलता अनुभव होने लगी। ;68द्ध

गायन और वाद्य का परस्पर अन्योन्याश्रित एवं घनिष्ट सम्बन्ध है। लोकवाद्य स्वरों को आरोह–अवरोह चलाते हैं एंव उनकी लय को बनाए रखने के लिए ताल को सँभाले रखते हैं। इसी आधर पर स्वरों के साथ चलने वाले तीन प्रकार के वाद्य पाए जाते हैं। तार–वाद्य ,

पफूँक–वाद्य तथा चोट–वाद्य।

मानवजीवन में लोकवाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पौराणिक युग से ही हम लोकवाद्यों के महत्व को देखते आए है। शिव डमरू बजाने के लिए प्रसिद्व है, विष्णु शंखधरी है, कृष्ण वेणु–वादक है, ब्रह्या ढोल के निर्माता है। अतः यह स्पष्ट है कि सभी वाद्यों का विकास लोकजीवन ही से हुआ है। बालक आम की गुठली घिसकर पपिहरा बनाकर वाद्यरूप में प्रयोग करते हैं अथवा ज्वार के पत्राों को मोड़ कर मन बहलाने के लिए अपना बाजा तैयार कर लेते हैं। पंडित अपनी पूजा में शंख और घड़ियाल का बजाना नहीं भूलते। वृ(जन कीर्तन के समय करताल अवश्य बजाते हैं। इन लोकवाद्यों ने हमारे जीवन के साध्ना और भत्तिफ–पक्ष को सदैव बल दिया। मीरा भी नाचीं तो पैरों में घूँघरू बाँध्ना नहीं भूली। ;69द्ध

स्थल रूप से लोकवाद्यों को चार भागों में बाँटा गया है।

;1द्ध पफूँक–वाद्य, ;2द्ध खाल–वाद्य, ;3द्ध तार–वाद्य, ;4द्ध ताल –वाद्य।

;1द्ध पफूँक –वाद्य :– पफूँक– वाद्य के अन्तगर्त बाँसुरी, बीन, शहनाई, शंख, श्रीमुख, अलगोजा, आदि वाद्य –यंत्रा आते है। बाँसुरी सबसे प्राचीनतम वाद्य है। यह बाँस की बनी होती है। पीतल की भी बाँसुरी बनने लगी है। इसका प्रयोग जिस प्रेम से शास्त्रीयसंगीत वादक करते है प्रायः उतने ही प्रेम से लोकवादक भी। इसमें सात सुर होते हैं। यह अत्यन्त ही मोहक वाद्य –यंत्रा है।

बीन, तुम्बे या लौकी की बनी होती है। आगे अलग से एक तुम्बी होती है। पिफर उसका पतला भाग करीब एक पफुट लम्बा होता है। तुम्बी की ओर से यह बजाया जाता है। अध्कितर सँपेरे इसे बाजार साँप को मोहित करते है। इसमें साँप को आकर्षित करने की आकर्षित करने की अद्भुत शत्तिफ होती है।

शहनाई सबसे मुधर एवं श्रेष्ठ पफूँक–वाद्य हैं। यह बड़ी चिलम के आकार की होती है। बनारम अच्छी शहनाईयों का निर्माण केन्द्र है। लोकनाटकों तथा विवाह एवं उत्सवों में यह वाद्य बजाया जाता है।

शंख एक जन्तु का खोल है जो सागर में उत्पन्न होता है। यह प्रायः पूजा, कथा तथा पवित्रा कार्यों के अवसर पर ही बजाया जाता है। अध्कितर साधु लोग ही इसे बजाते हैं। मंदिरों में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

गोमुखा पीतल का लम्बा वाद्य है। जब राजाओं की सवारियाँ निकलती थी या सेना लड़ने के लिए जाती थी तब आगे–आगे गोमुखा बजाया जाता था। अब भी बारात में इसका प्रयोग होता है।

अलगोभफा प्रारम्भिक वाद्य माना जाता है। यह तीन छेद वाला होता है। आदिवासियों का यह विशेष वाद्य है। बांकिया–वाद्य डेढ़ हाथ लम्बा होता है। और विवाह के अवसर पर ढोल के साथ बजाया जाता है। यह बैंड का सा साज है।

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 03 | July - September 2017

;2द्ध खाल वाद्य :– खाल वाद्यों के अन्तगर्त ढोल, नौबत, नगाड़ा, चंग, डमरू, ढोलक, चंमडी, चटकी, खंजरी आदि वाद्य आते हैं।

ढोल लोकगीत गाते सयम स्वतंत्रा रूप में प्रयोग किया जाता है। लोकनृत्य के समय भी इसका उपयोग प्रमुख रूप से किया जाता है। सामूहिक नृत्य एवं जन्मोत्सव, विवाह तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर इसका प्रयोग आवश्यक हो गया है। ढोल एक लकड़ी का खोल होता है जिसके दोनों पार्श्वो में बकरी का चमड़ा मढ़ा होता है। इसे रस्सी से कसा भी जाता है। जिससे इसकी आवाज में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। इसकी ध्वनि बड़ी दूर तक जाती है।

नौबत एक ओर से मढ़ा हुआ होता है। इसमें भैंस काम में लाया जाता है। यह शहनाई के साथ बजाया जाता है। नगाड़ा भी एक ओर से मढ़ा होती है। यह भी लकड़ी की चोट से बजाया जाता है। नौबत और नगाड़ा प्रायः एक से होते है। शादी तथा नौंटकी में यह अध्कि बजाया जाता है। इसी की शक्ल की नगाड़ी भी होती है। बड़ा नगाड़ा नर कहलाता है और छोटी नगाड़ी मादा।

एक गोलकार तथा एक ओर से मढ़ा वाद्य जो होली के अवसर पर बजाया जाता है चंग कहलाता है। एक ओर बकरे की खाल से मढ़ा होता है। यह रस्सी से मढ़ा जाता है। इसे दाहिने हाथ से पकड़ा उसी से चिमटी मारते है और बाएँ हाथ से बजाते हैं। इस पर ध्माले गीत चलते हैं। इसका प्रिय ताल कहरवा हैं। चंगडी चंग से छोटी होती है।

ढोलक का अध्कि प्रचलन लोकोत्सवों मे होता है। इससे सभी प्रकार की ताले बजाई जाती है। यह आम की लकड़ी के खोल का बना होता है और दोनों ओर बकरी की खाल से मढ़ा होता है। दोनों मुह बराबर होता है और दोनों ओर बकरी की खाल से मढ़ा होता है। दोनों मुंह बराबर होते हैं, बीच का भाग चौड़ा होता है। इसे प्रायः सभी उत्सवों, लीलाओं, ख्याल, कव्वाली आदि गाते समय उपयोग में लाया जाता है। घरों में स्त्रियाँ हर गीतों में इसे बजाती है। कभी –कभी पैसे की टेक भी ढोलक के ऊपर दी जाती है।

खंजरी एक ओर बकरी के चमड़े से मढ़ी होती है। भिखारी इसका उपयोग अध्कि करते है। ढोलक के साथ इसे भी बजाया जाता है। चंग की भाँति ही इसे बजाया जाता है। डमरू छोटे आकार का दोनों ओर से मढ़ा होता है। यह भगवान शिव का प्रसिद्व वाद्य है। इसके बीच का भाग दो सिरों से पतला होता है और यहाँ दो डोरियाँ बँधी होती है जिनमें सिरे पर मोम की गोलियाँ बनी होती है। हाथ में पकड़कर हिलाने से दोनों और की गोलियाँ दोनो सिरों के चमड़ों पर पड़ती है और उससे ध्वनि निकलती है इसे आजकल मदारी या जादू दिखाने वाले प्रयोग में लाते हैं।

मटकी पकी हुई मिट्टी की मजबूत बनी होती है। इसके मुँह पर हथेली से थाप मारी जाती है और किसी पैसे या धतु के टुकड़े से मटकी के पेट पर टेक दी जाती है। इससे तबले का काम भी लिया जाता है। कुछ लोग ध्ंरू मटकी के मुँह पर बाँध्कर बजाते है। कहीं –कहीं इसके मुँह को चमड़े से मढ़ भी दिया जाता है।

;3द्ध तार–वाद्य :– तार –वाद्यों के अन्तगर्त तम्बूरा, सारंगी, इकतार आदि वाद्य–यंत्रा आते हैं।

तम्बूरा के 'निशान' तथा 'चौतारो' भी कहा जाता है। इसमें चार तार होते है। यह तानपूरा या सितार से मिलता –जुलता है यह लकड़ी का बना होता है। इसकी कुन्डी तुम्बे को नहीं होती। बाएँ हाथ से इसे पकड़ कर दाएँ हाथ से बजाया जाता है। जोगी इस पर भजन गाते है।

सांरगी में 27 तार होते है। यह सागवन लकड़ी की बनती है। माथे में खूंटियाँ होती है। ऊपर की तातें बकरी की आंतों की बनी होती है। साथ ही इसकी तेरह तुरमें होती है। सब स्टील की होती है। इन्ही चार बड़े खूँटों से बाँध् दिया जाता है। इस गज से बनाया जाता है। गज में घोड़े के बाल बँध् रहते है। यह भी जोगियों का विशेष वाद्य है।

इकतारा तम्बूरे का ही आदि रूप है। एक बाँस में छोटे गोल तुम्बे को पफँसा दिया जाता है। थोड़ा–सा भाग काटकर बकरी के चमड़े से मढ़ दिया जाता है। बाँस के नीचे एक तार बाँध् जा सकते है। इन तारों को खूँटी से भी कस दिया जाता है। तार पर उँगली से ऊपर नीचे चोट करके इसे बजाया जाता है। इसे कन्ध् पर रखकर एक हाथ से ही बजाया जाता है।

;4द्ध ताल–वाद्य – ताल– वाद्य उसे कहते है जिसमें ताल देने की क्षमता हो। ताल देने के लिए यह एक प्रकार की आवृति ही से बजता है। इसे 'आध साज' कहते है। आरती के
समय बजने वाला घण्टा, काँसे की थाली, भुफाँभफ, घड़ियाल, कटोरे आदि इसी प्रकार के वाद्य–यंत्रा है।

मजीरा प्रसिद्व ताल–वाद्य है। यह पीतल और काँसे की मिली धतु से बना होता है। दो मजीरों को आपस में टकराकर ध्वनि उत्पत्रा की जाती है। भजनों मे इसका उपयोग अध्कि होता है।

भफाँभफ मजीरों का छोटा रूप है। खड़ताल सामूहिक गान अवसर पर प्रयोग में लाया जाता है। यह 'करताल' से बना है। यह निरन्तर एक ही लय की ताल देने वाला वाद्य है। इसका प्रयोग साधु–सन्त अध्कि करते है। इकतारे एवं मंजीरों के साथ इसका मेल अध्कि बैठता है। इस प्रकार लोकगीतों में बिना ताल के गायन असम्भव है। ताल की दृष्टि से ढ़ोलक, मजीरा, नागाड़ा, चंग आदि वाद्य प्रसिद्व है। इन्ही वाद्यों के द्वारा लोकगीतों को एक मिश्रित ताल और लय में बाँध गया है। उपर्युत्तफ सभी प्रकार के लोक–वाद्यों का लोकगीतों के गायन की दृष्टि से अत्यध्कि महत्व है।

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN: 2348 - 5612 | Volume: 04 Issue: 03 | July - September 2017

संदर्भ

1. विवेचनात्मक गद्य – महादेवी वर्मा – पृ0 142
2. भारतीय लोकसाहित्य – डा0 श्याम परमार – पृ0 53
3. ध्रती गाती है – देवेन्द्र सत्यार्थी – पृ0 178
4. म्दबलबसवचंमकपं ठतपजंदपबं. टवसण प च्चम 448
5. वही – पृ0 447
6. वही – पृ0 448
7. डममज उल चमवचसमए च्हम 194ण
8. ।ैजनकल पद व्ततपेवद थ्वसा. स्वतम. प्दजतवकनबजपवद . चंहम प्ण
9. आज कल – नम्बर 1951
10. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका–लोकसंस्कृति अंक –पृ0 250– 52 ;सं0 210द्ध
11. राजस्थान के लोकगीत ;पूर्वा(द्ध प्रस्ताव –पृ0 1–2
12. कविता कौमुदी–भाग 5–प्रस्ताव –पृ0 1–2
13. काव्य के रूप –पृ0 123
14. लोकायन – पृ0 16
15. जीवन के तत्व और काव्य सि(ान्त – पृ0 275
16. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय– भूमिका – पृ0 5
17. हाडौती लोकगीत – चन्द्रशेखर भट्ट–प्राक्कथन लेखक–डा0 सत्येन्द्र।
18. लोकगीत ओर संगीत–परम्परा ;जोध्पुरद्ध
19. मैथिली लोकसाहित्य का अध्ययन ... ;पृ0 16
20. नवभारती– ;श्री गंगानगरद्ध वर्ष 6 अंक 1 पृ0 56